Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, P-ISSN: 3049-172X, Volume 2 | Issue 2 | (Apr – Jun 2025)

नागार्जुन के काव्य में राजनीतिक व्यंग्य

चंचल साह
शोध छात्रा – काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सारांश:-

आधुनिक साहित्य में शुरुआत से ही अपनी बात कहने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया जाता है । जब भी किसी व्यक्ति, किसी विषय, धर्म, राजनीति आदि पर कटाक्ष करना हो, व्यंग्य ही एकमात्र विकल्प होता है। आधुनिक साहित्य के निर्माता भारतेंदु ने अपने तात्कालिक समय की राजनीति, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक विषमताओं पर कटाक्ष करने के लिए व्यंग्य को ही सहारा बनाया । इसी तरह भारतेंदु युग से लेकर छायावादी युग तक के लगभग सभी कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यंग्यात्मकता को प्रधानता दी है । हिंदी साहित्य का प्रगतिवादी युग विषमताओं का ही युग रहा है। नागार्जुन इस युग के प्रमुख कवि रहे हैं । उनके रचनाकाल 1935 से लेकर उनके मृत्युपर्यंत तक राजनीति में अनगिनत बदलाव हुए । देश को अंग्रेजों से आजादी तो मिल गई पर आम जनता अभी भी अपने ही देश में, अपने ही देश के कुछ नामचीन लोगों के हाथों की कठपुतली थी । देश की स्वतंत्रता पश्चात् भी उनकी जरुरतें, देश के शासकों से उनकी उम्मीदें जब की तस थी । सरकारें बदल रही थी, पर अब भी आमजन की स्थिति में कोई बदलाव नहीं हो रहा था । केंद्रीय सत्ता अपने मनमानी करने से बाज़ नहीं आ रहे थे । नागार्जुन राजनीति के इस बदलते परिवेश को महसूस कर रहे थे । नागार्जुन ने राजनीति के इस बदलते परिवेश और उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं से निपटने के लिए अपनी रचनाओं में व्यंग्य को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया । उन्होंने अपने तीखे व्यंग्यात्मक बाणों से किसी को नहीं बख्शा । सामान्य व्यक्ति के साथ नेतागण, भारत के निर्माणकर्ता, सत्ताधारी वर्ग सभी उनके दृष्टि में थे । उन्होंने अपनी कविताओं में इन सारे वर्गों पर व्यंग्य के माध्यम से तंज कसा । वे एक सशक्त व्यंग्यकार थे ।

बीज शब्द:- राजनीति, सरकार, परिस्थिति, शासन, स्वतंत्रता, गणतंत्र

मूल आलेख :-

नागार्जुन प्रगतिवादी विचारधारा के अग्रणी कवि व लेखक हैं । उनका कृतत्व संसार बहुत बड़ा है । उन्होंने हर विषय पर अपनी लेखनी चलाई । उनकी रचना में तात्कालीक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक यथार्थ दिखलाई पड़ती है । उनकी पैनी दृष्टि तात्कालिक परिस्थिति को देख समझ रही थी । उनकी कविताएँ यथार्थ पर व्यंग्य करती नजर आती है । आधुनिक हिन्दी साहित्य के शुरुआत में भी व्यंग्य का सहारा लिया जाता था । भारतेन्दु से लेकर छायावादी महाप्राण कवि निराला ने भी अपनी बात को कहने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है । ये कवि तात्कालिक व्यवस्था का विरोध करने, सामान्यजन तक अपनी बात पहुंचानें के लिए व्यंग्य को एक मात्र साथी बनाया । नागार्जुन के साथ कई कवि जैसे केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शिवमंगल सिंह सुमन आदि भी रचना कर रहे थे । ये कवि अपनी रचनाओं में अपने परिवेश को ही चित्रित कर रहे थे । उनकी रचनाएँ भी तत्कालिक परिवेश के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक यथार्थ से भरी होती थी परंतु नागार्जुन जिस

तरह व्यंग्यात्मक रूप से यथार्थ का चित्रण कर रहे थे वैसा कोई और रचनाकार शायद ही कर रहा था । डॉ. प्रकाश चंद्र भट्ट के अनुसार "अकेले नागार्जुन की ही कविता पढ़कर हिन्दी कविता के व्यंग्य का आरंभिक रूप-विकास और उत्कर्ष की अवस्थाओं को जाना जा सकता है । वे हिन्दी व्यंग्य काव्य के मात्र सबल और सशक्त प्रतिनिधि हैं । व्यंग्य के विभिन्न स्तरों से उनकी कविता सजी हुई है । अशिव का प्रतिकार और समाज के मंगल का ध्येय उससे ध्वनित हो रहा है ।"[1]

नागार्जुन जिस समय लिख रहे थे वह समय भारत के लिए अव्यवस्था का समय था । उनकी रचनाएँ आजादी के दौर की है । वे आजादी के पहले और बाद दोनों ही स्थितियों के साक्षात दर्शक रहे हैं । वे परिवेश में धीरे-धीरे हो रहे बदलाव को भाप रहे रहे थे । वे ये देख रहे थे कि जो सत्ताधारी थे वे केवल बातों के धनी थे । सत्ताधारी वर्ग स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हुए थे । 15 अगस्त 1947 को भारत को अंग्रेजों से तो आजादी मिल गई परंतु आजादी के पहले जो स्थिति थी, आजादी के बाद उसमें कोई खास बदलाव नहीं आया था । अंतर बस इतना आया कि जो ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था हमारे भारत देश को लूटकर यहाँ की संपदा को अपने देश ले जा रही थी, अब आजादी के बाद अपने ही देश के कुछ सत्ताधारी, पूंजीपति देश को खोखला कर रहे थे, उसे लूट रहे थे, अपनी आर्थिक स्थिति दुरुस्त कर रहे थे, अपना वर्चस्व कायम कर रहे थे । शोभाकांत लिखते हैं – "आजादी हासिल करने से पहले हमारी राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान समाज की छोटी-बड़ी विसंतियों की ओर अक्सर जाता था । वे सामाजिक समस्याओं का हल निकालने को उद्धत दिखते थे, रूढ़ियों के खिलाफ वे अक्सर लोहा लेते थे । स्त्रियों, शूद्रों, निर्धनों, पीड़ितों का पक्ष लेने में हिचकते नहीं थे, लेकिन अब इन मामलों में उन्होंने देहातों को अनाथ छोड़ दिया है । जनता से हमारे नेताओं का उतना भर मतलब रहता है, जितने से चुनाव में जीत हासिल हो । बाकी भाड़ में जाए गाँव के लोग । चुनाव में जीत हासिल करके जब वे लोग ऊपर पहुंचते हैं और गद्दियों पर बैठते हैं तो उनका सारा ध्यान दलीय एंव वर्गीय स्वार्थ साधना में लग जाता है । सामाजिक समस्याओं की रत्ती भर भी परवाह उन्हें रह नहीं जाती ।"[2] यह सामाजिक लूट-खसोट, राजनीतिक उथल-पथल नागार्जुन की दृष्टि से छुपी नहीं थी । एक रचनाकार होने के नाते नागार्जुन समाज पर प्रभाव डालने वाली प्रत्येक घटना पर अपनी दृष्टि बनाए रखते है । उन्होंने तत्कालिक समय में आए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों को न केवल पहचाना, बल्कि उस पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की । वे जन प्रतिबद्धता के कवि हैं । वे खुद को जनता के प्रति जवाबदेह समझते हैं । वे जबरदस्त तेवर के साथ इन परिस्थितियों के निर्माणकर्ता, नेतागणों को फटकार लगाते है । उनका हमला करने का तरीका कुछ अलग सा है । वे व्यंग्य का सहारा लेते है । अपने गुस्सा, आक्रोश झुंझलाहट, खीझ को नागार्जुन ने व्यंग्य भरे शब्दों का सहारा लेते हुए स्पष्ट रूप में आकार दिया । जिन बातों को साधारण शब्दों में कहना मुश्किल होता है, नागार्जुन ने बड़ी आसनी से व्यंग्य का सहारा लेते हुए कह दिया । खगेन्द्र ठाकुर ने नागार्जुन के बारे में लिखा है – "सामाजिक सत्य व्यक्त करने की प्रवृति ने उनके व्यंग्य को तीक्ष्णता और तीव्रता प्रदान की है । आधुनिक हिन्दी कविता में नागार्जुन से बेहतर कोई व्यंग्यकार नहीं है । व्यंग्य को जितनी व्यापकता और गहराई नागार्जुन ने प्रदान की है, उतनी किसी दूसरे ने नहीं ।"[3]

नागार्जुन में अपने बदलते परिवेश और उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं से निपटने से की अद्भुत शक्ति थी । उन्होंने अपने तीखे व्यंग्यात्मक बाणों से किसी को नहीं बख्शा । सामान्य व्यक्ति के साथ नेतागण, भारत के निर्माणकर्ता, सत्ताधारी वर्ग सभी उनकी दृष्टि में थे । उन्होंने अपनी कविताओं में इन सारे वर्गों पर तंज कसा ।

नागार्जुन का पहला काव्य संग्रह 'युगधारा' नाम से 1953 में लगभग आजादी के 6 साल बाद आता है । उनका अंतिम काव्य संग्रह 'अपने खेत में' 1997 में प्रकाशित होता है । पहले और अंतिम काव्य संग्रह के बीच का समय राजनीति एवं सामाजिक उथल-पुथल का काल रहा है । इन सारी अव्यवस्थाओं का लेखा-जोखा नागार्जुन की कविताओं में उभर कर सामने आता है । वैसे भी साहित्य अपने अंदर देश, काल, समाज के प्रतिबिंब को समेटे रहता है । नागार्जुन, जो खुद को जन प्रीतिनिधि का कवि मानते हैं, उनकी कविताओं में अगर तत्कालिक व्यवस्था के दुर्दशा का चित्रण मिलता है तो यह अस्वाभाविक नहीं है ।

आजादी के बाद आम जनता को लगा कि अब जब ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से मुक्ति मिल चुकी है तो उनकी भी स्थिति मे सुधार होगा । परंतु सारे मंसूबे धरी की धरी रह गई । उनकी स्थिति दिन-ब-दिन और खराब होती गई । सूखा-अकाल, महामारी चारों तरफ बढ़ गई । लोगों को भर पेट भोजन नहीं मिल पा रहा । इस भूख ने लोगों को एक-दूसरे का दुश्मन बना दिया है । अपने ही अपनों को लूटने में लगे हैं । नये भारत में बनी नई सरकार भी अपने जिम्मेदरी से पल्ला झाड़ रही थी । नागार्जुन ने अपनी 'तीस हजारी कार!' नामक कविता में लिखते हैं –

"मंडराती है यम की नानी खेतों में, खलिहानों में

भूख-अकाल-महामारी की फ़सल उगी मैदानों में

लूट-पाट की होड़ मच गई नरभक्षी हैवानों में

लटक रहा है ताला गल्ले की सरकारी दुकानों में"[4]

यह आजादी और यह नई बनी सरकार नागार्जुन को कलयुग का आगाज लग रही थी । अपने स्वार्थसिद्धि के लिए बनी सरकार को नागार्जुन लंगड़ी सरकार कह कर संबोधित करते हैं । भारत की आजादी को नागार्जुन कागज की आजादी कहते है –

"कागज की आजादी मिलती ले लो दो-दो आने में

लाल भवानी प्रकट हुई है सुना है तेलांगने में"[5]

जब भारत को स्वंतत्रता मिली, उस समय बहुत गरीबी थी । वैसे देखा जाए तो इस आकड़े में आज भी कुछ ज्यादा बदलाव नहीं आया है । गरीबों की संख्या अधिक और पूंजी वर्ग की गिनती में जमीन-आसमान का अंतर है । कुछ पूंजीपति लोग अपने पूंजी के बल पर गरीबों पर शासन करते है । इन धनिक लोगों पर नागार्जुन ने व्यंग्यात्मक शैली को अपनाते हुए कटाक्ष किया है । वे अपने 'बताऊँ' नामक कविता में लिखते हैं –

"बताऊँ ?

कैसे लगते हैं –

दरिद्र देश के धनिक ?

कोढ़ी-कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण !!"[6]

चूँकि देश को आजाद हुए अभी कुछ वर्ष ही बीते थे । सरकार व्यवस्था को संभालने में लगी हुई थी । इस गरीबी को पाटने के लिए तत्कालीन सरकार नई-नई योजनाएं ला रही थी । देश की अर्थव्यवस्था को बदलने व अच्छी व्यवस्था में बढ़ोत्तरी करने के लिए 1951 में पंचवर्षीय योजना की शुरुवात की गई परंतु यह योजना भी बहुत कम सफल होती दिखती है । योजना का आरंभ तो बहुत जोर-शोर से किया जाता है पर धरातलीय स्तर इसका कोई खास असर नहीं दिखता । यह योजना लंबी-चौड़ी, थका देने वाली और परिणाम में निरर्थक साबित हुई । नागार्जुन इस योजना पर व्यंग्य करते हुए इसकी तुलना हिडिंबा की हिचकी और सुरसा की जंभाई से करते हैं । उपर्युक्त शीर्षक कविता में ही वे आगे लिखते हैं –

"बताऊँ ?

कैसी लगती है –

पंचवर्षीय योजना

हिडिंबा की हिचकी, सुरसा की जंभाई !!"[7]

एक तो ये योजनाएँ सफल नहीं हो रही थी । इससे बेकारी, लाचारी बढ़ती जा रही थी । लोगों के सुख-सुविधा के लिए किए गए वादे दूर-दूर तक नहीं दिख रहे थे । इन परिस्थिति में नागार्जुन शांति कैसे रह सकते थे । ये परिस्थितियाँ उनकी बैचेनियां बढ़ा रही थी , उन्हें आराम कहाँ था । वे इन परिस्थितिओं को उत्पन्न करने वालों पर व्यंग्य करते हैं–

"शांति शांति

धत् रहने भी दो !

क्या बकते हो !

लटक रही है तलवार रात-दिन इस गर्दन पर

बेकारी की

लाचारी की

बीमारी की

चैन नहीं, आर्म नहीं है

सपने में भी सुख-सुविधा का नाम नहीं हैं ”[8]

माता-पिता के बाद बच्चों को कोई संस्कार देने का काम करता है तो वह एक शिक्षक होता है । वह बच्चों को नैतिक शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक ज्ञान भी देता है पर उसीकी हालत तंग रहती है । नेतागण बड़ी-बड़ी गाड़ियों में आकर विद्यालयों का दौरा कर जाते हैं , व्यवस्था को सुधारने का वादा कर जाते है पर कोई सुधार होने की संभावना नहीं रहती । चुनाव का समय हो या किसी इलाके में किसी नेता का आगमन शिक्षकों को काम पर लगा दिया जाता है । नेताओं को बच्चों के भविष्य की बिल्कुल चिंता नहीं होती , उन्हें तो बस अपनी जुलूस, भाषणबाजी से मतलब होता है । शिक्षा की यह दुर्गति तब भी थी और आज भी जस की तस कायम है । एक शिक्षक को इन सरकरी ताम-झाम में इतना उलझा दिया जाता है कि वह बच्चों को शिक्षा देने के सिवाय हर काम करता नजर आता है । इतना सब करने के बावजूद महीनों-महीनों तक शिक्षकों को वेतन नहीं मिलता । उनकी पारिवारिक स्थिति दिन पर दिन खराब होती जाती है । बच्चों को कड़ी मेहनत कर ऊंचे पद पर पहुँचने वाले शिक्षक की दयनीय दशा का चित्रण नागार्जुन ने अपने काव्य में किया है । नागार्जुन ने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था पर भी व्यंग्य किया है । आज की शिक्षा व्यवस्था, उनमें शिक्षकों की खस्ता हालात, उनकी मानसिक स्थिति और नेताओं का अपने में मशगूल रहने का जिक्र नागार्जुन के 'मास्टर' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है –

“घुन-खाय शहतीरों पर की, बरखड़ी विधाता बाँचे

फटी भीत है, छत छूती है, आले पर बिसतुइया नाचे

बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे

दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम के साँचे

अरे, अभी उस रोज वहाँ पर सरे आम जक्शन-बाजार में

शिक्षा मंत्री स्वयं पधारे चम-चम करती सजी कार में

ताने थे बंदूक सिपाही, खड़ी रहीं जीपें कतार में

चटा गए धी रज का इमरित, सुना गए बातें उधार में ।”[9]

भारत की कानून व्यवस्था बिल्कुल भी अच्छी नहीं है । यह सिर्फ उच्च वर्ग के हाथ की कठपुतली मात्र बन कर रह गई है । पूंजीपतियों और सत्ताधारियों ने इसे जैसे चाहे वैसे नचा लें । निम्न वर्ग को इंसाफ तो मिलने से रही, उन्हें मिलती है सिर्फ सजा । गुंडा, चोर, मंत्री, पुलिस सभी एक ही कतार में खड़ी है । अंतर सिर्फ पोशाक का है । एक वर्दी-कोट पहने हुए है दूसरे के हाथ में चाकू है । सब एक-दूसरे से मिले हुए हैं । नागार्जुन ने अपनी कविताओं में कानून व्यवस्था पर भी व्यंग्य किया है । 'पुलिस अफसर' कविता में वे लिखते हैं –

"ताजा मुंडों से करते हैं जो पिशाच का पूजन

है असह्य जिनके कानों को बच्चों का कल-कूजन

जिन्हें अंगूठा दिखा-दिखा कर मौज मारते डाकू

हावी है जिनके पिस्तौलों पर गुंडों के चाकू"[10]

1885 में काँग्रेस की स्थापना होती है । देश को आजादी दिलाने में इस संस्था का बड़ा योगदान रहा है । आजादी से पहले कांग्रेसी नेताओं ने आम जनता को बड़े-बड़े सपने दिखाए । आजादी के बाद सारे वादे धराशयी हो गये । स्वदेशी सरकार गैरजिम्मेदार निकली । भ्रष्टाचार, लूट-खसोट और बढ़ गई । सरकार की जिम्मेदारियाँ केवल कागजों में लिखित रूप में ही सीमित रह गई । इन सबका जिम्मेदार नागार्जुन ने कांग्रेस को ही माना है । वे इसे कांग्रेस की महिमा मानते है । वे कांग्रेस पर तंज कसते हुए 'चमत्कार' कविता में लिखते हैं –

"महज विधान सभा तक सीमित है जंतत्री खाका

यह भी भारी चमत्कार है, कांग्रेसी महिमा का

तीन रातों में तेरह जगहों पर पड़ता है डाका

यह भी भारी चमत्कार है, कांग्रेसी महिमा का"[11]

कांग्रेस अपनी मनमर्जियां चलाने लगी थी । उनकी सारी विचारधाराएँ हवा हो गई । नागार्जुन ने इनपर भी अपना व्यंग्य बाण साधा है -

"खड़ी हो गई चाँपकर कंकालों की हुक

नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक

उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक

जिसमे कानी हो गई शासन की बंदूक"[12]

भारत की गरीबी दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही थी । सरकार इसे सुधारने के नाम पर रोज नई- नई योजना ला रही थी । परंतु सारी योजनाएँ कागजों पर ही रह जाती थी, वह संसद से बाहर आम जनता तक पहुँचती नहीं थी । देश में गरीबी भुखमरी चारों तरफ व्याप्त थी । आर्थिक स्थिति बड़ी नाजुक थी । इसी समय इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ भारतयात्रा पर आयी थी । आम जनता को राहत पहुँचने के बजाएँ नेहरू सरकार ब्रिटेन की महारानी की स्वागत में लगी हुई थी । इधर जनता भूख से बेहाल थी, उधर सरकार रानी की स्वागत में पैसा को पानी की तरह बहा रही थी । सरकार की इस फैसले पर नागार्जुन व्यंग्य करते है । 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' कविता में वे लिखते हैं –

"आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,

यही हुई राय जवाहर लाल की

रफ़ू करेंगे फटे-पुराने जाल की

यही हुई है राय जवाहर लाल की

आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी !"[13]

15 अगस्त को स्वांतन्त्रता और 26 जनवरी को गणतंत्र लागू होने के कारण पूरा देश इसे धूमधाम से मनाता है । लोगों को तारीख के हिसाब से आजादी तो मिल गई परंतु आर्थिक आजादी का स्वाद सामान्य जनता तक नहीं पहुंची । जो अमीर थे वो और अमीर होते गए, गरीबों की स्थिति और निम्न स्तर की हो गई । गरीब और अमीर के बीच का अंतर बढ़ता गया । इस महत्वपूर्ण दिनों का लाभ केवल सेठ और मंत्री लोग ही उठाते हैं । ऐसा लगता है कि यह 15 अगस्त और 26 जनवरी का दिन इन्हीं लोगों के लिए आती । नागार्जुन ने आजादी और गणतंत्र के साथ मिली इस अंतर पर व्यंग्य करते हुए '26 जनवरी,15 अगस्त' शीर्षक कविता में लिखा है –

"किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है !

कौन यहाँ सुखी है , कौन यहाँ मस्त है !

सेठ ही सुखी है, सेठ ही मस्त है

मंत्री ही सुखी है , मंत्री ही मस्त है

उसी की है जनवरी, उसी का अगस्त है ।"[14]

नागार्जुन ने अधिकांश व्यंग्य राजनीति, उससे समाज पर पड़ने वाले असर को लक्ष्य करके लिखा । वे यहाँ के नेताओं, उनकी मनोकामना से भली-भाँति परिचित थे । गाँधीजी ने जो राम राज्य का सपना देखा था वह सपना ही रह गया । गाँधी के मृत्यु के बाद उनके चेलों ने उनके सत्य और अहिंसा के आदर्श की धज्जियां उड़ा कर रख दी । रामराज्य जैसी महान कल्पना कभी धरातल पर कार्यान्वित नहीं हो पाई । 'इस गुब्बारे की छाया में' कविता में नागार्जुन ने खुद को गाँधी का चेला कहने वालों पर व्यंग्य किया है । वे लिखते हैं –

"लाज-शरम न रह गई बाकी गाँधी जी के चेलों में

फूल नहीं, लाठियाँ बरसतीं, रामराज्य की जेलों में

भैया, लंदन ही पसंद है आजादी की सीता को

नेहरू अब उमर गुजारेंगे अंग्रेजी खेमें में

लाज-शरम रह गई न बाकी गाँधी जी के चेलों में ।"[15]

'तीनों बंदर बापू के' कविता में नागार्जुन ने व्यंग्य की मीठी चुटकी लेते हुए गाँधीवादीओं की पोल खोली है । गाँधी के शिष्य अब अपने हिसाब से नियम बनाने लगी है । ये गाँधी के आदर्शों को अपनी इच्छानुसार परिभाषित कर रहे हैं । नागार्जुन बंदर यानी गाँधी के शिष्य को गाँधी के ताऊ कह कर संबोधित करते हैं –

"बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के

सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के

सचमुच जीवनदानी निकले तीनों बंदर बापू को

ज्ञानी निकले, ध्यानी निकले तीनों बंदर बापू के

जल-थल-गगन-बिहारी निकले तीनों बंदर बापू को"[16]

नागार्जुन के व्यंग्य बाण से कोई भी नहीं बच सका है । राजनीति में रह रहे किसी भी व्यक्ति को उन्होंने नहीं बक्शा है । वे छुप-छुप कर या फुसफुसा कर किसी पर प्रहार नहीं करते, बल्कि डंके की चोट पर, हर एक का नाम लेकर उनका विचारों का प्रतिरोध करते हैं । वे ये नहीं देखते की सत्ता में स्त्री है या पुरुष । नागार्जुन के लिए बस वह एक सत्ताधारी व्यक्ति है जो राजनीति को गंदला कर रहा है, भ्रष्टाचार फैला रहा है । 'इंदुजी क्या हुआ आपको' कविता में नागार्जुन ने इंदिरा गाँधी पर व्यंग्य किया है । 1966 में इंदिरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री बनती हैं । हाथ में सत्ता आते ही वे अपनी मनमर्जियाँ करने लगती है । वे सत्ता के मद में चूर हैं । अपने पिता के आदर्शों को भूल, बस वोट के लिए पिता का नाम इस्तेमाल करती है । उनका प्रशासन छात्रों के खून का प्यासा है । नागार्जुन ने श्रीमती इंदिरा गाँधी के राजनीतिक कूटनीतिज्ञता, तानाशाही व्यवहार पर क्षोभ प्रकट करते हैं । वे श्रीमती गाँधी के तानाशाही प्रशासन की तुलना हिटलर के तानाशाही से करते हैं । यहाँ वे तत्कालिक सरकार के अनसुनेपन को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं -

"इंदु जी, इंदु जी, क्या हुआ आपको ?

क्या हुआ आपको ?

सत्ता की मस्ती में

भूल गई बाप को ?

इंदु जी, इंदु जी, क्या हुआ आपको ?

बेटे को तार दिया, बोर दिया बाप को !

....

सुन रहीं गईं रहीं

एक-एक टाप को

हिटलर के घोड़े की, हिटलर के घोड़े की

एक-एक टाप को ... छात्रों के खून का नशा चढ़ा आपको

यही हुआ आपको

यही हुआ आपको ”[17]

निष्कर्ष:-

नागार्जुन अपने परिवेश से जुड़े रहते हैं । सामाजिक, राजनीति में हो रहे दूषित बदलाव को वे महसूस करते हैं । इसी अनुभव को वे अपने कविताओं में व्यंग्य के माध्यम से प्रकट करते हैं । सच बोलने पर जो खतरा उनके सिर पर आ जायगा, उस खतरे से भी वे अनभिज्ञ नहीं हैं । वे कहते हैं – “आज सच बोलना जुर्म हो गया है । सच बोलने पर हानि उठानी पड़ती है और झूठ बोलने पर मेवा-मिसरी चखते हैं । चापलूसों की इस बढ़ती हुई कद्र पर कवि ने व्यंग्य किए हैं, जिसमें सामाजिक अव्यवस्था स्पष्ट हो रही है । पर इसका मूल दूषित राजनीति ही है ।”[18] चूँकि वे खुद को जनता का प्रतिनिधि कवि मानते है और पूरी जिम्मेदारी के साथ इसका निर्वाह करते हैं । इसके लिए व्यंग्य को एकमात्र सहारा बनाते हैं । अपनी कविताओं में वे पूंजीपति , सत्ताधारी आदि के वास्तविक चेहरे आम जनता के सामने लाते हैं । ऐसा वे लोकप्रियता पाने या किसी स्वार्थलोलुपवश नहीं करते बल्कि जनता में चेतना व जागृति लाने के लिए करते हैं । नागार्जुन के बारे में शिवकुमार मिश्र लिखते हैं “नागार्जुन चूँकि वास्तविक अर्थों में सर्जक हैं, रचनाकार हैं, अतएव उनके रचना संसार से होकर गुजरना अपने में एक अद्वितीय अनुभव है, बड़े सुख का क्षण है, जहां से होकर गुजरने वाले को खोना कुछ नहीं, पाना ही पाना है । नागार्जुन की रचनाओं से होकर गुजरने के माने हैं अपने को, अपनी मनुष्यता को समृद्ध करना, अपने साहित्य विवेक और काव्य विवेक को कसौटी पर उतारते हुए उसे चमकाना, माँजना और निखारना, एक नई ऊर्जा से ऊर्जस्वित होना, अपनी परंपरा तथा अपने वर्तमान परिवेश के गहरे अहसास से युक्त होना और आमूल सामाजिक बदलाव की एक चल रही मुहिम में करोड़ों-करोड़ों साधारण जनता के हित में शरीक होना, वह सब कुछ पाने का हौंसला रखना जिसके बिना एक भरी-पूरी सार्थक मानवीय जिंदगी को नहीं जिया जा सकता ।”[19]

संदर्भ सूची:-

[1] नागार्जुन , सत्यनारायण – पृ. 52

[2] नागार्जुन : मेरे बाबूजी, शोभाकांत, पृष्ठ- 88

[3] नागार्जुन की सामाजिक चेतना, पृष्ठ- 139

[4] नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ-2, पृष्ठ-97

[5] हजार-हजार बाहोंवाली, पृष्ठ-48

[6] वही, पृष्ठ-100

[7] वही, पृष्ठ- 101

[8] वही, पृष्ठ- 84

[9] वही, पृष्ठ-98

[10] वही, पृष्ठ- 109-110

[11] वही, पृष्ठ- 97

[12] वही, पृष्ठ-168

[13] वही, पृष्ठ-140

[14] वही, पृष्ठ- 251

[15] नागार्जुन: इस गुब्बारे की छाया में, पृष्ठ-62

[16] नागार्जुन:चुनी हुई रचनाएँ-2, पृष्ठ-193

[17] नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ-104

[18] नागार्जुन:जीवन और साहित्य, पृष्ठ-59

[19] नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ-2, पृष्ठ-11